२७३ (कलश) **जो धर्मतीर्थ के अधिनाथ (नायक) हैं,...** तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ परमात्मा परमेश्वर पूर्ण ज्ञान-दर्शन को प्राप्त (हुए), वे धर्म के नायक हैं। आहाहा! लोकालोक को जाननेवाले हैं, इस अपेक्षा से अधिनाथ कहे हैं। एक-एक आत्मा इतनी ताकत धारक है। आहाहा! तीन काल-तीन लोक को एक समय में जाने, ऐसी ताकत अन्दर भरी है। आहाहा! वीर्य-शूरवीर पूर्ण भरपूर है। प्रत्येक आत्मा बल से पूर्ण भरपूर भगवान है। विश्वास नहीं बैठता। आहाहा! यहाँ एक बीड़ी में प्रसन्न, उसे यह (मानना)। आहाहा! अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त-अनन्त शान्ति, उसमें पूर्ण भरपूर ऐसा भगवान आत्मा, वह नायक है - ऐसा कहते हैं।

जो असदृश हैं... उसके साथ किसी का मिलान हो, ऐसा मेल नहीं है। आहाहा! ऐसा तू है, प्रभु! यह व्यक्त-प्रगट दशा है। तेरी शक्ति और स्वभाव, तेरा बल भी इतना और ऐसा ही है। आहाहा! अनन्त बल है, अनन्त ज्ञान है, अनन्त शान्ति है। यहाँ प्रगट की बात है। **(जिनके समान अन्य कोई नहीं है) और जो सकल लोक के एक नाथ हैं...** सम्पूर्ण लोक और अलोक को जानने में नाथरूप कहने में आते हैं। आहाहा! अपनी सम्पदा जो प्रगट हुई है, उसे तो रखता है, परन्तु लोक के नेत्र समान, दुनिया को नेत्र समान वह है। निमित्तरूप से यह कहते हैं।

ऐसे इन सर्वज्ञ भगवान में निरन्तर सर्वतः ज्ञान और दर्शन युगपत् वर्तते हैं। आहाहा! यह विश्वास आना। सर्वज्ञ भगवान को एक समय में सर्वज्ञ और सर्वदर्शन एकसाथ वर्तते हैं। भले दोनों गुण भिन्न हैं, दो गुण का विषय भी भिन्न है। आहाहा! दर्शन का विषय एकरूप है, ज्ञान का विषय भेदरूप है, तथापि एक समय में दोनों वर्तते हैं। आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा... प्रगट हुई दशा की बात है। आहाहा!

जिसने समस्त तिमिरसमूह का नाश किया है... जिसने समस्त अन्धकार चैतन्य के तेज के बल द्वारा... आहाहा! चैतन्य के तेज के बल द्वारा समस्त अन्धकार-तिमिर का नाश किया है। **ऐसे इस तेजराशिरूप सूर्य में...** जैसे तेजराशि। तेज की राशि सूर्य, **जिस प्रकार यह उष्णता और प्रकाश...** (युगपद्) वर्तते हैं सूर्य में ताप और प्रकाश एकसाथ

वर्तता है, वह तो प्रत्यक्ष है। उसी प्रकार भगवान आत्मा में **जगत के जीवों को नेत्र प्राप्त होते हैं...** सूर्य। सूर्य प्रगट होता है, तब नेत्र से देखते हैं; अन्धकार होवे, तब नहीं देखते। आहाहा! सूर्य उगे तो ऐसे यह देखे। **(अर्थात् सूर्य के निमित्त से जीवों के नेत्र देखने लगते हैं), उसी प्रकार...** कल यहाँ तक आया था।

ज्ञान और दर्शन (युगपत्) होते हैं... जैसे सूर्य में आताप और प्रकाश एक साथ दिखते हैं; वैसे भगवान आत्मा प्रगट दशा में केवलज्ञान और केवलदर्शन दो गुण (होने) पर भी एक समय में वर्तते हैं। आहाहा! इसका विश्वास लाना, यह कोई कम बात है? आहाहा! यह सब बातें दुनिया में माने। यह आत्मा अन्दर पूर्णज्ञान और पूर्ण दर्शन प्रगट करने पर एक समय में जान सके, ऐसी उसकी ताकत है। आहाहा!

उसी प्रकार सर्वज्ञ भगवान को ज्ञान और दर्शन एक साथ होते हैं और सर्वज्ञ भगवान के निमित्त से... आहाहा! भगवान को जब ज्ञान प्रगट हुआ और दिव्यध्वनि द्वारा प्रकाश किया, तब **जगत के जीवों को ज्ञान प्रगट होता है।** जैसे सूर्य के प्रकाश और आताप में आँख की वस्तु देखने की नजर ऐसे पड़ती है। प्रगट जानना-देखना है, ऐसी जिस प्रतीति होती है, उसकी नजर में सब दिख जाता है। आहाहा! ओहो! कैसे जँचे? बाहर क्रिया-प्रवृत्ति बैठे। जो इसकी चीज़ में नहीं है। शान्त, सबल, ज्ञान-दर्शन-आनन्द और वीर्य का पूर्ण स्वरूप। जगत के जीवों को पदार्थ देखने की आँख प्रगट हुई। आहाहा! भगवान को ज्ञान-दर्शन हुआ। है?

सर्वज्ञ भगवान के निमित्त से जगत के जीवों को... आहाहा! विशिष्टता क्या है?- कि सर्वज्ञ-सर्वदर्शी भगवान हुए, हैं। परन्तु सबको उनके सन्मुख देखने की श्रद्धा नहीं और नजर में भी पड़ता नहीं। आहाहा! ऐसा लिया है। जिसे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी अन्दर में बैठे, सर्वज्ञ-सर्वदर्शी... सर्वज्ञ अर्थात् क्या? भाई! आहाहा! जिस ज्ञान में तीन काल— जिसका आदि नहीं, अन्त नहीं, जिनके ज्ञान में... आहाहा! तीन लोक और अलोक एक समय में जाने। आहाहा! अलोक का अन्त नहीं, काल का अन्त नहीं, उसे एक समय में जाने। भाई! यह बात बैठना (चाहिए)। ऐसे के ऐसे जैन में जन्मे, भगवान ऐसे है और वैसे, ऐसा मानकर बैठे - ऐसा नहीं। अन्तर इसे नहीं बैठा, बापू! आहाहा!

यहाँ तो यह कहते हैं, **सर्वज्ञ भगवान के निमित्त से...** उनसे नहीं। परन्तु होनेवाले

को वे निमित्त हैं। निमित्त से होता नहीं। आहाहा! परन्तु भगवान सर्वज्ञ और सर्वदर्शी महाविदेहक्षेत्र में अभी विराजमान हैं, हाजराहजूर हैं, समवसरण है, इन्द्र आते हैं, जिनकी सभा में बाघ और सिंह, बकरे के झुण्ड की तरह आते हैं। आहाहा! जैसे बकरे नरमाई से आते हैं, वैसे जंगल में से सिंह और बाघ प्रभु की वाणी सुनने अभी आते हैं। आहा!

यहाँ तो ऐसा कहना है कि जिसे, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी जगत में है, ऐसा जिसे जँचे, उसे अन्दर की आँख पदार्थ देखने के लिये प्रगट होती है। आहाहा! क्या कहा यह ?

जैसे सूर्य का प्रकाश और ताप। ताप—ताप-गर्मी। गर्मी और प्रकाश, ये दोनों एकसाथ हैं। प्रकाश बाहर पड़े, तब अन्धे अर्थात् जिन्हें रात्रि में आँखों से दिखता नहीं, वे सब देखते हो जाते हैं। आहाहा! इसी तरह तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ-सर्वदर्शी परमात्मा प्रगट हुए, उनके निमित्त से यहाँ तो जगत के जीवों को... अंक लिया नहीं। आहाहा! **जगत के जीवों को...** आहाहा! ढ़ेरों जीव अनन्त पड़े हैं। उन **जगत के जीवों को ज्ञान प्रगट होता है।** परमात्मा को ज्ञान और दर्शन प्रगट होते हैं। उन्हें माननेवाले को भी अन्दर ज्ञान दृष्टि प्रगट होती है। आहाहा! ऐसा कहना चाहते हैं।

जैसे सूर्य के प्रकाश में, पहले अन्धेरे में नहीं दिखता, वह इस प्रकाश में, भले प्रकाश दिखाता नहीं, प्रकाश तो निमित्त है, देखता है तो स्वयं अपने बल से। इसी प्रकार सर्वज्ञ और सर्वदर्शी इस जगत में है। आहाहा! यह बात जिसके हृदय में बैठी, उसका हृदय पदार्थ को जानने को तैयार हो गया है। भगवान का ज्ञान और दर्शन जहाँ पूर्ण है, ऐसा जाना। अरे! उनने अनन्त बल से प्रगट किया है। वह मुझमें भी अनन्त बल है। मैं अनन्त बल का धनी एक समय में ज्ञान और आनन्द पूर्ण प्रगट करनेवाली मेरी ताकत है। आहाहा! जिन्होंने एक समय में प्रगट किया तो मुझमें भी एक समय में इतना बल भरा है, इतनी वीर्यता अन्दर भरी है कि मैं भी एक समय में ज्ञान और दर्शन प्रगट कर सकूँ।

भगवान के ज्ञान-दर्शन का निर्णय होने पर अपने आत्मा को भी स्वयं वस्तु को जानना सीखा और जानने पर तीन काल और तीन लोक को जाने, ऐसी दशा प्रगट होगी। ऐसी दशा प्रगट होगी। आहाहा! भगवान है.. है.. है.. ऐसी बातें तो बहुत सब करते हैं। बापू! इसे इन्तर में... आहाहा! वीतराग-सर्वज्ञ एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने - ऐसा देखना और ऐसे दर्शन और ज्ञान प्रगट हुए हैं, ऐसा जिसे प्रतीति में आता है,

उसे भगवान का ज्ञान निमित्त होता है। किसमें ? जगत के जीवों को ज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! यह श्लोक है। टीकाकार का श्लोक है।

मुमुक्षु : अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय को जाने। यहाँ तो एक ही बात ली है। यह जाने, उसे आत्मा जानने में आवे। (प्रवचनसार) ८० गाथा में आया न ? वे तो परद्रव्य है, परन्तु परद्रव्य में इतनी शक्ति, इतना बल कि ज्ञान और दर्शन एक समय में प्रगट किया। ऐसे बलवन्त परमात्मा की उपस्थिति है। ऐसी उपस्थिति अन्दर में बैठ जाए, उसे केवलज्ञान और केवलदर्शन की पहली प्रतीति और अनुभव तो हो जाए। आहाहा! सूक्ष्म बात है, बापू! दुनिया से बहुत... दुनिया का पूरा रास्ता... हो गया। परन्तु यह क्या चीज़ है ? और इसे मानने से क्या होता है ? ऐसा अन्तर में इसे विश्वास नहीं है। आहाहा! तीन लोक के नाथ को जाने; युगपद् देखे और जाने, ऐसी शक्तिवाले प्रभु, वह जिसे बैठे, उसके नेत्र खुल जाते हैं। आहाहा! उसके सम्यग्दर्शन-ज्ञान नेत्र तो खुल जाते हैं और पश्चात् उसे केवलज्ञान-केवलदर्शन भी खुले बिना नहीं रहते। आहाहा! गजब बात है। वैसे तो अरिहन्त और सिद्ध हैं—ऐसा तो बहुत बार रट गया, कण्ठस्थ कर गया। पाठशाला में पास हो गया। यहाँ पास नहीं हुआ। आहाहा

तीन लोक का नाथ, जिसे एक समय में, उपयोग पर में दिये बिना स्व और पर पूर्ण जानना-देखना एक समय में हो, ऐसी ताकत अन्दर थी, वह प्रगट हुई है। आहाहा! ऐसी प्रगट हुई है, उसे माननेवाला, उसे ज्ञान और दर्शन अनन्त मेरा बल है - ऐसी प्रतीति-अनुभव हुए बिना नहीं रहता - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। जैसे ताप और प्रकाश होने पर जीवों को नेत्र में देखना होता ही है। आहाहा! देखनेवाले को। आताप और सूर्य (प्रकाश) हो, और अन्धे या दूसरी आँख हो तो भी जिसके सामने देखे नहीं और घर में अन्धकार में पड़े हों। आहाहा!

यह देहदेवल में विराजमान भगवान सब प्रभु है, सब भगवान है। स्त्री-पुरुष आत्मा; कौआ, कुत्ता तिर्यंच और नारकी, देव, तथा एकेन्द्रिय... आहाहा! वे सब भगवान हैं। द्रव्य से भगवान हैं। वे यह प्रगट जिसे हुआ, उस ऊपर से सब द्रव्य, वह भगवान है - ऐसी प्रतीति हुई और स्वयं को भी प्रतीति हुई कि मैं भी अब केवलज्ञान और केवलदर्शन

प्रगट कर सकूँगा। आहाहा! शान्तिभाई! ऐसी बातें हैं। आहाहा! अन्दर में जँचना चाहिए। भाषा में नहीं, धारणा में नहीं। आहाहा! ज्ञान की मूर्ति प्रभु, आनन्द का सागर, शान्ति के— अनन्त-अनन्त शान्ति के प्रवाह से भरपूर भगवान को एक समय में ज्ञान और दर्शन प्राप्त हुए, ऐसा ही आत्मा मैं हूँ। ऐसा कहा न?

उनके **निमित्त से जगत के जीवों को...** आहाहा! **ज्ञान प्रगट होता है।** आहाहा! इसे अन्तर में विश्वास बैठे। पूर्णानन्द के नाथ आत्मा प्रभु को पर्याय में पूर्णता प्रगट हुई, वह आयी कहाँ से? प्रभु! यह अन्दर में बल था, वह बाहर आया है। आहाहा! ऐसा मेरा आत्मा भी, प्रभु! अनन्त बल और अनन्त ज्ञान और आनन्द का सागर है। आहाहा! उसे मानने से पर्याय में ज्वार आवे, तब तो पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है और पश्चात् स्थिरता करे, तब केवलज्ञान होता है। ऐसा यह आत्मा है। यह कमजोर नहीं है। यह संसार में रहे - ऐसी ताकतवाला नहीं है। ऐसी ताकत नहीं है। वह तो पर्याय में है। ताकत तो मोक्ष में अनन्त ज्ञान-दर्शनरूप रहे - ऐसी ताकत है। आहाहा! अरे! यह तो अपनी पड़ी हो, उसकी बात है न, भाई! आहाहा! देखो न! इसमें बहुत समाहित कर दिया।

अर्थात् उसी प्रकार सर्वज्ञ भगवान को ज्ञान और दर्शन एक साथ होते हैं और सर्वज्ञ भगवान के निमित्त से... निमित्त से का अर्थ? जिसे होता है, उसके वह निमित्त कहलाता है। आहाहा! उससे होता हो तो वह तो भगवान विराजते हैं, तो सबको होना चाहिए। भगवान तो विराजते हैं। यहाँ भरतक्षेत्र में भगवान विराजते थे। उनसे होवे तो सबको होना चाहिए। परन्तु होता है, उसे वे निमित्त कहलाते हैं। आहाहा! निमित्तवाले जोर ऐसा देते हैं। यहाँ पाठ में निमित्त शब्द आया न? उनके निमित्त से-भगवान के निमित्त से।

मुमुक्षु : तू करे, तब निमित्त कहलाये न?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तू स्वयं प्रगट करे, तब उन्हें निमित्त कहलाये न? अन्धे हों, उनके सामने भी देखते नहीं। तीन लोक के नाथ का भले भरत में विरह पड़ा, परन्तु महाविदेह में तो सदा ही है। आहाहा! अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन (स्वरूप) ऐसे तीर्थंकर का विरह महाविदेह में कभी नहीं है। यह अभी भरत और ऐरावत में विरह पड़ गया। आहाहा! यह चीज़ जिसे अन्दर में बैठी... आहा! जगत में है। भले इस क्षेत्र में नहीं, परन्तु दूसरे क्षेत्र में है। इसका कारण कि इस आत्मा की इतनी ताकत है। उसे चाहे

जो क्षेत्र, कोई अवरोधक नहीं है। उसकी ताकत है। अनन्त बल है। आहाहा! अनन्त बल का बलिया! आहाहा! वे नहीं कहे, न बल? लड़के के विवाह ऊपर बलिया.. उस पनिहारे पर नहीं रखते? पनिहारा होता है, वहाँ पत्थर के ऊपर। यह तो उस दिन की बात है—पिचहत्तर वर्ष पहले की। मिट्टी का बल... बनावे। तुम्हारे तो होगा या नहीं होगा। यहाँ काठियावाड़ में होता है। आहाहा! वह तो बलदेव यह है। घर-घर में बनाते थे। खबर नहीं तुम्हें? नहीं? क्या नाम कहते थे उसे?

मुमुक्षु : बलियादेव।

पूज्य गुरुदेवश्री : बलियादेव। पानी का पनियारा होता है न, पनियारा? उसके ऊपर बलियादेव करे। तब यह तो हमारे अस्सी वर्ष पहले की बात है। हमारे घर में होता था, सब नजरों से देखा है। बलिया को माने। परन्तु वह सब बाहर से-धूल से। आहाहा! चैतन्य का नाथ जलहल ज्योति से भरपूर अनन्त बल का धनी, एक समय में पूर्ण ज्ञान और दर्शन एक समय में युगपद् जाने, वैसे प्रगट करे। उस जीव का निमित्तपना जिसने उपादान में जहाँ लिया, उसे वह निमित्त हुआ कहलाता है, तब उसने अपने से प्रगट किया है। आहाहा!

जगत के जीवों को ज्ञान प्रगट होता है। इसमें गजब किया है। आहाहा! उसकी इतनी ऋद्धिवाला प्रभु और मैं आत्मा, मुझमें उससे ऋद्धि और बल कम, वह आत्मा नहीं। आहाहा! पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन और पूर्ण आनन्द से भरपूर लाखों केवली महाविदेह में विराजमान हैं। बीस तीर्थंकर विराजते हैं। आहाहा! अरे! ऐसे परिणाम आ गये कि वहाँ से छूटकर यहाँ अवतार हो गया। वहाँ परमात्मा विराजते हैं। आहाहा! यह अपनी कचास की ही बात है। फिर ऐसा कहते कि प्रभु! तुम्हारी करुणा हुई कि मैं यहाँ आया। आपके ज्ञान में यहाँ आने का आया, वह करुणा। आहाहा! भगवान को दया वर्तती है, वह यह। वे जानते हैं न? यह दया। आहाहा! इसमें इतने में डाल दिया। **भगवान के निमित्त से जगत के जीवों को...** संख्या बाँधी नहीं। **जगत के जीवों को ज्ञान प्रगट होता है।** भगवान चैतन्य की ज्योति जलहला उठी... आहाहा!

श्लोक-२७४

(वसंततिलका)

सद्बोध-पोत-मधिरुह्य भवाम्बु-राशि-
मुल्लङ्घ्य शाश्वतपुरी सहसा त्वयाप्ता।
तामेव तेन जिन-नाथ-पथाधुनाहं,
याम्यन्यदस्ति शरणं किमिहोत्तमानाम् ।।२७४।।

(वीरछन्द)

हे जिन! सम्यग्ज्ञानरूप नौका में आरोहण करके।
भवसागर को लाँघ आप अतिशीघ्र सुशाश्वतपुर पहुँचे।
हे प्रभु! अब मैं उसी मार्ग से शाश्वतपुर में हूँ जाता।
क्योंकि लोक में उत्तम पुरुषों को है अन्य शरण भी क्या?॥२७४॥

[श्लोकार्थः](हे जिननाथ!) सद्ज्ञानरूपी नौका में आरोहण करके भवसागर को लाँघकर, तू शीघ्रता से शाश्वतपुरी में पहुँच गया। अब मैं जिननाथ के उस मार्ग से (-जिस मार्ग से जिननाथ गये, उसी मार्ग से) उसी शाश्वतपुरी में जाता हूँ; (क्योंकि) इस लोक में उत्तम पुरुषों को (उस मार्ग के अतिरिक्त) अन्य क्या शरण है?।२७४।

श्लोक -२७४ पर प्रवचन

२७४ (श्लोक)

सद्बोध-पोत-मधिरुह्य भवाम्बु-राशि-
मुल्लङ्घ्य शाश्वतपुरी सहसा त्वयाप्ता।
तामेव तेन जिन-नाथ-पथाधुनाहं,
याम्यन्यदस्ति शरणं किमिहोत्तमानाम् ।।२७४।।

श्लोकार्थ : (हे जिननाथ!) हे जिननाथ का पुकार कौन करे? आहाहा! जिसे,

वीतरागी परमात्मा अनन्त सिद्ध हो गये और लाखों मनुष्यरूप से विराजमान हैं। आहाहा! अनन्त-अनन्त वीतरागी सिद्ध हो गये और लाखों केवली विराजते हैं। बीस तीर्थंकर विराजते हैं, वे तो मनुष्यक्षेत्र में विराजते हैं। आहाहा! **(हे जिननाथ!) सद्ज्ञानरूपी नौका में आरोहण करके भवसागर को लाँघकर, तू शीघ्रता से शाश्वतपुरी में पहुँच गया।** आहाहा! यह सब प्रतीति आयी है या नहीं? यह कौन बोलते हैं यह? आहाहा!

हे नाथ! **सद्ज्ञानरूपी नौका में...** अन्तर की सम्यग्ज्ञानरूपी नाव में **आरोहण करके...** प्रभु! आप ज्ञान में आरोहण करके। कोई क्रिया करके आप केवलज्ञान-मुक्ति को प्राप्त हुए - ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसा कहा न? ज्ञान में आरोहण करके। आहाहा! **भवसागर को लाँघकर,...** आहाहा! चौरासी के अवतार छोड़ दिये। लांघ गये। अपने ज्ञान और दर्शन के बल से भवसागर को लाँघ गये। **तू शीघ्रता से शाश्वतपुरी में पहुँच गया।** और अल्प काल में आप शाश्वत् सिद्धपुरी में प्रभु एक समय में पहुँच गये।

अब मैं जिननाथ के उस मार्ग से... आहाहा! देखो! यह शिष्य ऐसा कहता है। शिष्य इसका नाम (है)। उसे अन्दर से विश्वास उत्पन्न हो जाता है। **अब मैं जिननाथ के उस मार्ग से (-जिस मार्ग से जिननाथ गये, उसी मार्ग से) उसी शाश्वतपुरी में जाता हूँ;...** आहाहा! पाँचवें काल के छद्मस्थ मुनि ऐसा जोर करके बात करते हैं। आहाहा! इस पंचम काल में हजार वर्ष पहले। पाँचवें काल में नहीं हो सकता और अमुक नहीं होता, पाँचवाँ काल बाधक है। धूल भी बाधक नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं? देखो न!

अब मैं जिननाथ के उस मार्ग से (-जिस मार्ग से जिननाथ गये, उसी मार्ग से) उसी शाश्वतपुरी में जाता हूँ;... आहाहा! वह शाश्वत् शिवपुरी, वहाँ मैं जाता हूँ, प्रभु! आहाहा! पंचम काल के अल्पज्ञ प्राणी परमात्मा के विरह में उनके अस्तित्व की मान्यता में करके... आहाहा! उनके विरह काल में भी वे हैं। यहाँ है कहीं, ऐसा मानकर स्वयं को कहते हैं, हे नाथ! आप भव को लाँघ गये, शाश्वतपुरी में चले गये। मैं भी, हे नाथ! आपके मार्ग के कारण... आहाहा! आपने जो मार्ग कहा, उसके अतिरिक्त कोई मार्ग है नहीं।

(-जिस मार्ग से जिननाथ गये उसी मार्ग से) उसी शाश्वतपुरी में जाता हूँ;... आहाहा! एक तो दर्शन-ज्ञान तो है, परन्तु अल्प काल में मोक्ष में जाऊँगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! मैं अल्प काल में शाश्वतपुरी में आऊँगा। आहाहा! संसार को लाँघकर

जैसे आप चले गये, वैसे में भी भव को लाँघकर, प्रभु! आता हूँ वहाँ। आहाहा! इस अनुभव का विश्वास कितना होगा! आहाहा! पंचम कल का प्राणी कहता है, प्रभु! आप जिस मार्ग से गये, शाश्वतपुरी को प्राप्त हुए, उस मार्ग में मैं आता हूँ। आहाहा! यहाँ इसमें रंक और दरिद्रता की बातें नहीं है। आहाहा! अनन्त-अनन्त आनन्द और अनन्त बल का धनी प्रभु! आपने प्रगट किया। ऐसा प्रगट करके, प्रभु! मैं चला आता हूँ - ऐसा कहते हैं। आहाहा! छद्मस्थ को खबर पड़ जाती होगी? केवली को पूछे बिना? आहाहा!

उसी शाश्वतपुरी में जाता हूँ; (क्योंकि) इस लोक में उत्तम पुरुषों को (उस मार्ग के अतिरिक्त) अन्य क्या शरण है? आहा! इस लोक में उत्तम पुरुषों को। उत्तम पुरुषों को। साधारण प्राणी तो किसी को भी शरण मानकर पड़े हैं। स्त्री के, पुत्र के, पैसे के, इज्जत के, दुकान के, धन्धे के। आहाहा! **इस लोक में उत्तम पुरुषों को (उस मार्ग के अतिरिक्त)...** वीतराग ने कहा हुआ जो मार्ग... आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति, ज्ञान और रमणता, ऐसा जो प्रभु ने मार्ग कहा, उस मार्ग को... आहाहा! **उत्तम पुरुषों को (उस मार्ग के अतिरिक्त) अन्य क्या शरण है?** दूसरा शरण क्या है? आहाहा! यहाँ तो व्यवहार शरण भी निकाल डाला।

व्यवहार आया था न? व्यवहार साधन है। सवेरे नहीं आया था? व्यवहार साधन। फिर वापस आया था कि ऐसा कुछ नहीं। उन के उन शब्दों में आया कि यह उपाय नहीं। आहाहा! ऐसे अर्थ करने में अन्तर पड़े। अपनी कमजोरी को शास्त्र के अर्थ में रच डालते हैं। प्रभु! तू अनन्त बल का धनी, एक समय में अनन्त-वीर्य प्रगट कर सके—ऐसी तुझमें ताकत है। उसे तू निर्बल और हीन मानकर भटक रहा है। आहाहा! इसके कारण भटकना हुआ। निर्बल और हीन मानना, यही मिथ्यात्व है। आहाहा! सबल और पूर्ण। आहाहा! देह में विराजते भगवान, ये सब पूरे-पूरे भरे हैं, कहते हैं। आहाहा! शक्ति से, गुण से, स्वभाव से... आहाहा! पूर्ण है, उसे न प्राप्त कर सके, यह प्रश्न रहने दे। यह बात यहाँ नहीं है, कहते हैं। प्रभु! आप जिस मार्ग से गये, उस मार्ग से मैं आता हूँ। आहाहा! पाँचवें काल का जीव कहता है। यहाँ पाँचवें काल का कहना है न? कौन कहता है यह? आहाहा! उस काल-फाल कहाँ बाधक है? आहाहा! पाँचवाँ काल हो या पहला काल हो या... आहाहा!

पहले काल में भी जुगलिया समकित प्राप्त करते हैं न? जुगलिया। पहले काल में

अर्थात् वे... आगे, हों! यहाँ के पहले काल में नहीं। आहाहा! **(उसके अतिरिक्त) अन्य क्या शरण है ?** किसे खोजना है ? आत्मा के अन्तर आनन्द के अनन्त बल से भरपूर भगवान को शोधना छोड़कर, अब तुझे शोधना क्या है ? ऐसी शरण छोड़कर, शरण यहाँ तो भगवान की शरण है, ऐसा भी नहीं कहा। अरिहन्ता शरणं, सिद्धा शरणं - मांगलिक में आता है न ? आहाहा! यहाँ तो आत्मा, यह शरण है। अरिहन्त भी शरण नहीं है। क्योंकि दूसरे को याद करने जाएगा, वहाँ विकल्प आयेंगे। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, अन्य इसके अतिरिक्त, हे नाथ! आप जिस मार्ग—दर्शन-ज्ञान-चारित्र से मोक्ष को प्राप्त हुए, उस मार्ग के अतिरिक्त, प्रभु! दूसरा शरण कहाँ है ? आहाहा! मैं भी उस मार्ग से चला आ रहा हूँ। आप जो सिद्धपुरी को प्राप्त हुए, मैं भी पंचम काल का जीव ऐसा कहता हूँ, प्रभु! मैं भी प्राप्त करूँगा। आहाहा! आहाहा! कितना जोर रखा! देखो न! यहाँ रंक का काम नहीं। निर्बलता का और रंक का काम नहीं। यह तो वीर का काम है। आहाहा! जिसे अन्तर में तीन लोक का नाथ विराजता है। एक क्षण में केवलज्ञान प्रगट कर सके। अनन्त बल जिसमें भरा है। यह शरीर, वाणी, मन के कारण नहीं। ये तो पर-जड़ हैं। इसमें (आत्मा में) अनन्त बल भरा है। अनन्त वीर्य। जिसके बल के जोर से अन्तर में केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त कर सके। आहाहा! ऐसे आत्मा का अनुभव, ऐसे आत्मा की प्रतीति, ऐसे आत्मा का अन्तरंग भरोसा (करनेयोग्य है)। आहाहा! इसके अतिरिक्त दुनिया में कुछ करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! यह २७४ हुआ।

श्लोक-२७५

(मंदाक्रांता)

एको देवः स जयति जिनः केवलज्ञानभानुः,
कामं कान्तिं वदनकमले सन्ततोऽत्येव काञ्चित्।
मुक्तेस्तस्याः सम-रस-मयानङ्ग-सौख्य-प्रदायाः,
को नालं शं दिशतु-मनिशं प्रेमभूमेः प्रियायाः।।२७५।।

(वीरछन्द)

केवलज्ञान-भानु ऐसे जिनदेव सदा जयवन्त रहें।
जो समरससमय अशरीरी सुखदायक मुक्ति को प्रिय हैं॥
उसके वदन कमल पर कोई अतुल कान्ति हैं फैलाते।
स्नेहमयी कान्ता को सुख का कौन नहीं कारण होते॥२७५॥

[श्लोकार्थः] केवलज्ञानभानु (-केवलज्ञानरूपी प्रकाश को धारण करनेवाले सूर्य) ऐसे वे एक जिनदेव ही जयवन्त हैं। वे जिनदेव समरसमय अनंग (-अशरीरी, अतीन्द्रिय) सौख्य की देनेवाली ऐसी उस मुक्ति के मुखकमल पर वास्तव में किसी अवर्णनीय कान्ति को फैलाते हैं; (क्योंकि) कौन (अपनी) स्नेहमयी प्रिया को निरन्तर सुखोत्पत्ति का कारण नहीं होता ?।२७५।

श्लोक - २७५ पर प्रवचन

२७५ (श्लोक)

एको देवः स जयति जिनः केवलज्ञानभानुः,
कामं कान्तिं वदनकमले सन्ततोऽत्येव काञ्चित्।
मुक्तेस्तस्याः सम-रस-मयानङ्ग-सौख्य-प्रदायाः,
को नालं शं दिशतु-मनिशं प्रेमभूमेः प्रियायाः।।२७५।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **केवलज्ञानभानु (-केवलज्ञानरूपी प्रकाश को धारण करनेवाले सूर्य)...** घट-घट में विराजता है। आहाहा! प्रभु दूर नहीं है। एक समय दूर नहीं है। तेरी नजर के आलस्य से रह गया है। आहाहा! शरीर में अनन्त केवलज्ञानभानु (मौजूद है)। जो वस्तु होती है, वह अपूर्ण नहीं होती, अशुद्ध नहीं होती... आहाहा! ऐसा जो भगवान आत्मा पूर्ण और शुद्ध है। **(-केवलज्ञानरूपी प्रकाश को धारण करनेवाले सूर्य)** आहाहा! **ऐसे वे एक जिनदेव ही जयवन्त हैं।** आहाहा! इस जगत में एक यह देव ही विराजमान है। आहाहा! दूसरी अस्ति हो, उसकी यहाँ कोई कीमत नहीं है, कहते हैं। जिनदेव एक है, मुझे तो उनकी कीमत है। आहाहा! है ?

केवलज्ञानभानु (-केवलज्ञानरूपी प्रकाश को धारण करनेवाले सूर्य) ऐसे वे

एक जिनदेव ही जयवन्त हैं। आहाहा! **वे जिनदेव समरसमय अनंग (-अशरीरी, अतीन्द्रिय) सौख्य की देनेवाली ऐसी उस मुक्ति के...** आहाहा! ऐसे **वे जिनदेव समरसमय अनंग (-अशरीरी, अतीन्द्रिय) सौख्य की देनेवाली...** इन्द्रिय के सुख तो जहर के सुख हैं। पाड़ डालते हैं निगोद में जानेवाले। आहाहा! एक वस्त्र का टुकड़ा रखकर मुनि माने और निगोद में जाए, ऐसी जो भाषा वीतराग की... आहाहा! वह सबको लागू पड़े न? जैन सिवाय सबको लागू पड़े न? आहाहा! पूर्णानन्द के नाथ को कोई कर्ता माने और कोई फल माने कि कुछ मिलेगा तो देवलोक में जाऊँगा। यह मिले और वह मिले... आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **केवलज्ञानभानु (-केवलज्ञानरूपी प्रकाश को धारण करनेवाले सूर्य) ऐसे वे एक जिनदेव ही जयवन्त हैं।** आहाहा! हमारे हृदय के अन्दर तो भगवान जिनदेव जयवन्त वर्तते हैं। आहाहा! बाकी सब कोई शाश्वत् चीज़ है नहीं। सब नाशवान... नाशवान... नाशवान। आहाहा! उसने कहा न, देखो न यह! हिम्मतभाई कहते थे। डाक्टरों ने इतनी मेहनत की। इंजेक्शन देकर चीरा, पेट चीरा। यह चीरा पूरा, सब चीर डाला परन्तु उल्टी कैसे होती है - यह पता नहीं लगा। यह सब डाक्टर पढ़े हुए। आहाहा! बड़े-बड़े डाक्टर। क्योंकि वह तो करोड़पति है। गुणवन्तभाई! नमक के व्यापारी। भावनगर है। स्वामीनारायण है। आहाहा! सब चीरा। बहुत देखा। इंजेक्शन लगाकर चमड़ी को वह करके। उसे दुःख न लगे इसलिए। खराब चमड़ी को... पता नहीं लगा। यह तो पता लगे बिना रहता नहीं, कहते हैं। आहाहा! राग और आत्मा को चीर डालने से केवलज्ञान प्रगट हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! वे डाक्टर नहीं कर सके, परन्तु यह डॉक्टर कर सके, ऐसा है। आहाहा! वह तो करोड़पति है, स्वामिनारायण है। भावनगर में नमक का कारखाना है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, हे नाथ! एक जिनदेव जयवन्त है। क्या कहते हैं यह? प्रभु! हमें तो दूसरा सब जयवन्त दिखता ही नहीं। एक जिनदेव ही जयवन्त है। आहाहा! एक वीतरागी परमात्मा, जिन्होंने वीतरागीदशा प्रगट की, वे ही एक जयवन्त दिखते हैं। बाकी कोई जयवन्त है नहीं कुछ। आहाहा! यह करोड़ों रुपये के महल और अरबों रुपये और पैसे, आहाहा! धूल और धाणी। आहाहा! अरबोंपति। वहाँ वह कहा न, नैरोबी। पन्द्रह व्यक्ति तो अरबोंपति, अरबपति। एक व्यक्ति आया था। रतिलाल। बेचारा अकेला है। बड़ा भाई मर गया। अरबपति। आया। आवे तो सही न, बड़ा नाम सुनकर। वापस वहाँ भी आये थे, मलाड़-मुम्बई। परन्तु यह बात कहाँ? आहाहा! सब एक आत्मा के

अतिरिक्त किसी भी चीज़ की विस्मयता और आश्रयता लगे, तब तक प्रभु का अनादर होता है। आहाहा!

प्रभु चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा की अतिशयता के अतिरिक्त किसी भी चीज़ की अतिशयता और विशेषता भासित हो तो प्रभु का अनादर है। आहाहा! तू विशेष नहीं, विशेष तो यह है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि विशेष होवे तो मैं एक आत्मा हूँ। प्रभु! तुम विशेष में जयवन्त वर्तते हो। **वे जिनदेव समरसमय अनंग (-अशरीरी, अतीन्द्रिय) सौख्य की देनेवाली ऐसी...** आहाहा! भगवान तीन लोक का नाथ समरसरूप अनंग। समतामय सुख, अनंग का सुख। यह तो अंग का सुख, वह दुःख (है)। अंग का सुख, वह दुःख; अनंग का सुख, वह सुख। आहाहा!

अनंग (-अशरीरी, अतीन्द्रिय) सौख्य की देनेवाली ऐसी उस मुक्ति के मुखकमल पर.... आहाहा! मुक्ति का मुखकमल अर्थात् मुक्ति की प्रगट दशा पर **वास्तव में किसी अवर्णनीय कान्ति को फैलाते हैं;...** आहाहा! आप तो प्रभु! पर्याय में अवर्णनीय—वर्णन नहीं किया जा सके, कथन में नहीं आ सके—ऐसी शान्ति को फैला रहे हैं। आहाहा! यह गाथा! अरिहन्त के.. उसका अर्थ कि तू ऐसा है। आहाहा! **ऐसी उस मुक्ति के मुखकमल पर वास्तव में किसी अवर्णनीय कान्ति...** आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, वहाँ अवर्णनीय कोई कान्ति फैली। आहाहा! जो शक्तिरूप से केवलज्ञान था, अनन्त बल था, वह सब आप ऐसे फिराकर पर्याय पर ऐसे शोभा में लाये। उसे पर्याय में—शोभा में लाये। आहाहा! जिसमें नहीं था, वहाँ लाये। था, उसमें से लाये। आहाहा! है ?

किसी अवर्णनीय कान्ति को फैलाते हैं;... आहाहा! आनन्द की अवस्था, हे परमात्मा! आपके अनंग सौख्य, अशरीरी सुख, उसके आनन्द की शोभा को आप फैलाते हो। आहाहा! अवर्णनीय शोभाते हैं। आहाहा! **(क्योंकि) कौन (अपनी) स्नेहमयी प्रिया को निरन्तर...** आहाहा! परिणति पर्याय अपनी है, ऐसा कहते हैं। पर्याय को कौन पूर्ण शोभा न दे ? - ऐसा कहते हैं। आहाहा! **कौन (अपनी) स्नेहमयी प्रिया को निरन्तर सुखोत्पत्ति का कारण नहीं होता ?** आहाहा! दुनिया में भी अज्ञानी इस अनुसार करता है। आहाहा! अपनी जो निर्मल परिणति—केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द—ऐसी जो दशा अन्तर में भरी थी, उसे प्रगट की, प्रभु! उसे आप शोभाते हो और आपको कान्ति शोभती है। उससे आपकी कान्ति है। आहाहा! है ?

अवर्णनीय कान्ति को फैलाते हैं; (क्योंकि) कौन (अपनी) स्नेहमयी प्रिया को निरन्तर सुखोत्पत्ति का कारण नहीं होता ? आहाहा! अपनी जो पर्याय है, वह अपनी प्रिया है। उसमें कौन शोभा न करे ? अनन्त-अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र-आनन्द की पर्याय में शोभा करते हैं, प्रभु! आहाहा! आज बहुत सरस आ गया। आहाहा! प्रभु ऐसे हैं और ऐसा तू है। तुझमें और प्रभु में द्रव्यदृष्टि से कुछ अन्तर नहीं है। पर्याय में अन्तर है—संसार और सिद्ध। आहाहा! भगवान आत्मा स्त्री का शरीर हो या पुरुष का हो, पशु का हो या देव का हो, नारकी का हो। भगवान तो अन्दर परिपूर्ण विराजमान है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि हे नाथ! आपकी परिणति की शोभा क्यों नहीं कराते ? **सुखोत्पत्ति का कारण नहीं होता ?** पूर्ण सुखोत्पत्ति का कारण आत्मा है। आत्मा की पर्याय में पूर्ण सुख की उत्पत्ति का कारण तुम हो। आहाहा! बाहर कहीं सुख नहीं है। आहाहा! पैसे में, स्त्री में, कुटुम्ब में, इज्जत में, शरीर के बल में, तेज में, शरीर के तेजफल में धूल भी नहीं है। आहाहा! प्रभु! आपकी अन्तर की कान्ति यह जो पर्याय में प्रगट होती है... आहाहा! वह अवर्णनीय है। कथन नहीं किया जा सकता, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। आहाहा! ऐसा भगवान देह में विराजता है। यह विद्यमान चीज़ विराजती है। उसे- विद्यमान को न माने और अविद्यमान- जो नहीं है, जो कायम रहनेवाली नहीं है, उसे विद्यमानरूप से मानता है! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! मैं तो आपके पूर्ण आनन्द के सुख में शोभा जो करते हो, वह मुझे प्रिय है। आहाहा! और वह **सुखोत्पत्ति का कारण नहीं होता ?** आहाहा! **सुखोत्पत्ति का कारण नहीं होता ?** २७५ हुआ।

श्लोक-२७६

(अनुष्टुप्)

जिनेन्द्रो मुक्तिकामिन्याः मुखपद्मे जगाम सः।
अलि-लीलां पुनः काम-मनङ्ग-सुख-मद्वयम् ।।२७६।।

(वीरछन्द)

मुक्ति कामिनी वदनाम्बुज में अलिलीला धर लीन हुए।
वास्तव में अनुपम अनंग सुख को वे श्री जिनवर भोगें॥२७६॥

[श्लोकार्थ :] उन जिनेन्द्रदेव ने मुक्तिकामिनी के मुखकमल के प्रति भ्रमर-लीला को धारण किया (अर्थात् वे उसमें भ्रमर की भाँति लीन हुए) और वास्तव में अद्वितीय अनंग (आत्मिक) सुख को प्राप्त किया।२७६।

श्लोक - २७६ पर प्रवचन

२७६ (श्लोक)।

जिनेन्द्रो मुक्तिकामिन्याः मुखपद्मे जगाम सः।
अलि-लीलां पुनः काम-मनङ्ग-सुख-मद्वयम्।।२७६।।

श्लोकार्थ : आहाहा! **उन जिनेन्द्रदेव ने मुक्तिकामिनी के मुखकमल के प्रति...** मुक्तिरूपी कामिनी, ऐसा मुखकमल **प्रति भ्रमर-लीला को धारण किया...** आहाहा! मुखकमल के प्रति भ्रमरलीला को धारण किया। यह भ्रमर फिरते हैं, यहाँ आत्मा के आनन्द, जैसे फूल के रस में भ्रमर फिरते हैं, वैसे आत्मा की पर्याय के रस में आपकी आनन्द की दशा अन्दर फिरती है। आहाहा! समय-समय की पर्याय बदलती है। आहाहा! एक समय का आनन्द, वही दूसरे समय आनन्द और फिर... आहाहा! **जिनेन्द्रदेव ने मुक्तिकामिनी के मुखकमल के प्रति भ्रमर-लीला को धारण किया (अर्थात् वे उसमें भ्रमर की भाँति लीन हुए)...** जैसे भ्रमर रस में लीन हो जाता है, वैसे प्रभु आत्मा के आनन्द में लीन हो गये।

और वास्तव में अद्वितीय अनंग (आत्मिक) सुख को प्राप्त किया। आहाहा! अद्वितीय अपूर्व-अनन्त काल में कभी एक सेकेण्ड भी नहीं किया, ऐसे प्रभु! आपने अनन्त सुख की प्राप्ति की। आहाहा! ऐसा विश्वास और अनुभव जिसे बैठे, उसे केवलज्ञान हुए बिना रहता नहीं। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)